THE TIMES OF INDIA

Date:28-09-22

The Lalit Effect

CJI's asking for better use of judicial time must be followed by lower courts. And throw out frivolous PILs

TOI Editorials

Supreme Court benches frowning on adjournment pleas by lawyers and asking them to argue listed matters is refreshing, and a result of CJI UU Lalit increasing the number of matters being listed daily. Often adjournments are taken for reasons like lawyers being busy in other courts. The net result is that cases keep getting postponed, and judicial time is wasted, especially when judges and opposing pleaders have come prepared.

SC's actions must have a salutary effect down the judicial hierarchy. Subordinate courts where 4. 2 crore criminal and civil cases are pending have the most pronounced effect on citizens. Civil Procedure Code stipulates a maximum of three adjournments when hearing a suit. Criminal Procedure Code instructs judicial officers to hear trials and inquiries on a day-today basis and that a lawyer engaged in another court cannot be a ground for adjournment. In 2017, a government panel on speeding up commercial disputes found the threeadjournment rule violated in 50% of cases.

No less diversionary for constitutional courts are frivolous PILs. Last week, a CJI Lalit-led bench forced a petitioner to withdraw a PIL seeking to regulate liquor trade and consumption in Delhi. When rebuffed as a policy issue, the petitioner suggested a warning label akin to cigarettes, to which the court noted that "some people say drinking in small quantities isn't harmful". This was a rational observation. But such nonsensical petitions shouldn't even be consuming a minute of judicial time. Similarly, Bombay HC dismissed a PIL seeking a ban on ads of non-veg food, asking the petitioners why they wish to encroach on others' rights. There are ample justiciable matters crying for quicker attention of courts, most critically bail pleas and appeals against conviction. SC's new zeal against adjournments must survive CJI Lalit's departure.

दैनिक भास्कर

Date:28-09-22

एनर्जी-बाजार में फिर कोयले की वापसी

अंशुमान तिवारी, (मनी-9 के एडिटर)

साल 1306 : ब्रिटेन की गर्मियां। नाइट्स, बैरन्स, बिशप्स यानी ब्रिटेन के सामंत गांवों में मौजूद अपनी रियासत और किलों से दूर लंदन आए थे, जहां संसद का पहला प्रयोग हो रहा था। सामंतों का स्वागत किया आबोहवा में घुली एक अजीब-सी गंध ने। एक तीखी चटपटी-सी महक जो नाक से होकर गले तक जा रही थी। यह गंध कोयले की थी। उस वक्त तक लंदन के कारीगर लकड़ी छोड़कर उस काले पत्थर को जलाने लगे थे। सामंतों ने धुआं-धक्कड़ का विरोध किया तो सम्राट एडवर्ड ने कोयले के इस्तेमाल पर रोक लगा दी। इस पाबंदी ने बहुत असर नहीं किया। तो सख्ती हुई, जुर्माने लगे, फर्नेस तोड़ दी गईं। मगर वक्त कोयले के साथ था। 1500 में ब्रिटेन में ऊर्जा की किल्लत हो गई। ब्रिटेन दुनिया का पहला देश हो गया, जहां कोयले का संगठित और व्यापक खनन शुरू हुआ। पहली औद्योगिक क्रांति कोयले के धुंए में लिपटकर धरती पर आई। इसके करीब 521 साल बाद दुनिया को फिर कोयले के धुएं से तकलीफ महसूस हुई। क्योंकि धुआं-धुआं आबोहवा पृथ्वी का तापमान बढ़ाकर विनाश कर रही थी। नवंबर 2021 में ग्लासगो में दुनिया की जुटान में तय हुआ कि 2030 तक विकसित देश और 2040 तक विकासशील देश कोयले का इस्तेमाल बंद कर देंगे। इसके बाद थर्मल पॉवर यानी कोयले वाली बिजली नहीं होगी। भारत-चीन राजी नहीं थे मगर 40 देशों ने कोयले से तौबा कर ली। 20 देशों ने यह भी तय किया कि 2022 के अंत से कोयले से बिजली वाली परियोजनाओं को वित्त पोषण यानी कर्ज आदि बंद हो जाएगा। मुनादी पिट गई। नई खदानों पर काम रुक गया। एंग्लो ऑस्ट्रेलियाई माइनिंग दिग्गज रिओ टिंटो ने ऑस्ट्रेलिया की अपनी खदान में 80% हिस्सेदारी बेचकर कोयले को श्रद्धांजलि की कारोबारी-रजिस्ट्री कर दी थी।

लौट आया काला सम्राट : कोयला मरा नहीं। फंतासी नायक या भारतीय टीवी सीरियलों के हीरो की तरह वापस लौट आया। पुतिन ने यूक्रेन पर हमला कर दुनिया की ऊर्जा योजनाओं को काले सागर में डुबा दिया। पर्यावरण की सुरक्षा के वादे और दावे पीछे छुट गए। पूरी दुनिया कोयला लेने दौड़ पड़ी है। इनमें सबसे आगे वे ही हैं, जो कोयले का युग बीतने की दावत बांट रहे थे। दुनिया की करीब 37% बिजली कोयले से आती है। इसकी क्षमता का अधिकांश हिस्सा यूरोप से बाहर स्थापित था। यूरो-स्टेट के आंकड़ों के मुताबिक 2019 तक यूरोप अपनी केवल 20% ऊर्जा के लिए कोयले का मोहताज था। बाकी ऊर्जा सुरक्षित स्रोतों और गैस से आती थी। यूरोप 2025 तक अपने अधिकांश कोयला बिजली संयंत्र खत्म करने वाला था, लेकिन अब रूस की गैस न मिलने के बाद ऑस्ट्रिया, जर्मनी, इटली और नीदरलैंड्स ने अपने पुराने कोयला संयंत्र शुरू करने का ऐलान किया है। इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी (आईईए) ने बताया है कि यूरोपीय समुदाय में कोयले की खपत 2022 में करीब 7% बढ़ेगी। पूरी दुनिया में कोयले की खपत इस साल यानी 2022 में 8 अरब टन हो जाएगी, जो 2013 की रिकार्ड खपत के बराबर है।

किंग कोल की कीमत में चमक : इस मई में यह 400 डॉलर प्रति टन के रिकार्ड स्तर पर को छू गई। माइनिंग डॉट कॉम और इन्फोरिसोर्स ने बताया कि विश्व के ताजा खनन निवेश में कोयला अब तांबे से आगे है। 2022-23 में करीब 81 अरब डॉलर की 1863 कोयला परियोजनाएं सक्रिय हैं। 2022 के जून तक दुनिया की कोल सप्लाई चेन में निवेश

रिकॉर्ड 115 अरब डॉलर पर पहुंच गया था। इसमें बड़ा हिस्सा चीन का है। दुनिया के बैंकर और कंपनियां कोयले को पूंजी दे रहे हैं। इंडोनेशिया दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक और पांचवां सबसे बड़ा कोयला उत्पादक है। यहां के माइनिंग उद्योग को सिटी ग्रुप, बीएनपी पारिबा, स्टैंडर्ड एंड चार्टर्ड का कर्ज जनवरी 2022 में 27% बढ़ा है। एशिया की कोयला जरूरतों के लिहाज से इंडोनेशिया सबसे बड़ा सप्लायर है। अमेरिका कोयले का स्विंग उत्पादक है। बीते बरस चीन ने ऑस्ट्रेलिया से कोयला आयात पर रोक लगाई थी, उसके बाद अमेरिका का कोयला निर्यात करीब 26% बढ़ा है।

भारत और चीन की बेचैनी : रूस, इंडोनेशिया और ऑस्ट्रेलिया कोयले के सबसे बड़े निर्यातक हैं। इनके बाद अफ्रीका और कनाडा आते हैं। चीन, जापान और भारत सबसे बड़े आयातक हैं। अब यूरोप भी इस कतार में शामिल होने जा रहा है। इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी बता रही है भारत और चीन की मांग ने बाजार को हिला दिया है। इनकी कोयला खपत पूरी दुनिया की कुल खपत की दोगुनी है। दुनिया की आधी कोयला मांग तो केवल चीन से निकलती है। चीन की 65% बिजली कोयले से आती है। उसके पास कोयले का अपना भी भरी भंडार है। गैस की महंगाई और किल्लत के कारण यहां नई खनन परियोजनाओं में निवेश बढ़ाया जा रहा है। भारत में इस साल फरवरी में कोयले का संकट आया था। महाकाय सरकारी कोल कंपनी कोल इंडिया आपूर्तिकर्ता की जगह आयातक बन गई। इस साल भारत का कोयला आयात बीते साल के मुकाबले तीन गुना हो गया है। ईआईए का अनुमान है कि भारत में की मांग इस साल 7 से 10% तक बढ़ेगी। तमाम हिकारत, लानत-मलामत के बाद भी कोयला लौट आया है। अब अगर दुनिया को धुंआ रहित कोयला चाहिए तो एक टन कोयले को साफ करने 100 से 150 डॉलर प्रति टन हो सकता है। बकौल ग्लोबल कॉर्बन कैप्चर एंड रिसोर्स इंस्टिट्यूट के मुताबिक दुनिया को हर साल इसमें करीब 100 अरब डॉलर लगाने होंगे धुआं या महंगी बिजली में से एक को चुनना होगा, और यह चुनाव आसान नहीं होने वाला।

Date:28-09-22

भारत समेत सात देश दुनिया के लिए बने हैं उम्मीद की रोशनी

रुचिर शर्मा, (ग्लोबल इन्वेस्टर बेस्ट सेलिंग राइटर)

आज जब आर्थिक विश्लेषकगण दुनिया के अधिकतर देशों में केवल समस्याएं ही देख रहे हैं, तब इस बात को रेखांकित किया जाना जरूरी है कि कुछ देश निराशा के दौर में उम्मीद की रोशनी की तरह हैं। मंदी-ऊंची मुद्रास्फीति की ओर बढ़ती दुनिया में ये देश अपनी अलग पहचान कायम किए हुए हैं। इनमें भारत भी शामिल है। अन्य देश हैं, वियतनाम, इंडोनेशिया, यूनान, पुर्तगाल, सऊदी अरब, जापान। इन सभी में कुछ समानताएं हैं, जैसे मजबूत विकास-दर, मद्धम मुद्रास्फीति और स्टॉक मार्केट की दमदार वापसी।

इस सूची में सबसे कम चौंकाने वाला नाम वियतनाम का है। इसे आप कम्युनिज्म की ऐसी केस-स्टडी कह सकते हैं, जो कारगर है। आज जब चीन से पश्चिमी देशों के भू-राजनीतिक सम्बंध तनावपूर्ण हो रहे हैं तो उनके कारोबारी एक चाइना-प्लस-नीति अख्तियार कर रहे हैं। अकसर वे वियतनाम की ओर रुख करते पाए जाते हैं। एक मैन्युफेक्चरिंग एक्सपोर्ट पॉवर बनने के लिए जिस तरह के बुनियादी ढांचे की जरूरत होती है- सड़कों से लेकर बंदरगाहों और पुलों तक- उसमें वियतनाम ने खासा निवेश किया है और अपने दरवाजे व्यवसाय के लिए खोल दिए हैं। जब चीन की गति मंद पड़ रही है

तो इसका फायदा उठाने की तैयारी वियतनाम ने कर ली है। उसकी 7% की विकास दर आज दुनिया में सबसे ज्यादा है। मुस्लिम देशों की आर्थिक बदहाली की आलोचना करने वाले अकसर सबसे अधिक आबादी वाले देश इंडोनेशिया की अनदेखी कर देते हैं, जबकि प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर यह देश वैश्विक कमोडिटी प्राइस बूम का फायदा उठा रहा है। ग्रीन इंफ्रास्ट्रक्चर के निर्माण के लिए जरूरी सामग्रियों की बढ़ती मांग से उसे लाभ मिलने लगा है। उसका 275 मिलियन डॉलर का घरेलू बाजार निर्यात पर निर्भर नहीं है। दूसरे विकासशील देशों की तुलना में उस पर कर्ज भी कम है और उसकी मुद्रा भी स्थिर है। 5% विकास दर और 5% से कम मुद्रास्फीति के चलते वह एक चमकीला उदाहरण दुनिया के लिए बन गया है।

भारत की अर्थव्यवस्था दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ने वाली बनी हुई है। नीति-निर्माताओं ने निवेशकों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त सुधार कर दिए हैं। चीन के नियामक-तंत्र के अंकुशों से परेशान निवेशक अब भारत का रुख कर रहे हैं। डिजिटल सेवाओं और निर्माण क्षेत्र में किए गए नए निवेश अब मीठे फल देने लगे हैं। भारत का विशाल घरेलू बाजार वैश्विक मंदी से उसकी रक्षा करता है। जो देश एक दशक पहले यूरोजोन के कर्ज संकट में फंसे थे, वे अब रिवाइवल-मोड में हैं। इनमें यूनान और पुर्तगाल शामिल हैं, जिन्होंने अपने सरकारी घाटे में कटौती की है और रूस-यूक्रेन युद्ध के चलते यूरोप में जो गैस-आपूर्ति संकट निर्मित हुआ है, उससे वे मुख्यतया अप्रभावित हैं। यूनान को विदेशी निवेश और पर्यटन से बूम मिल रहा है, जो कोविड में बहुत कम हो गया था। अनूठी बात यह है कि उसके यहां मुद्रास्फीति नीचे जा रही है, जो कि मौजूदा वैश्विक माहौल में दुर्लभ है। पुर्तगाल की भी यही स्थिति है। वह सपोर्ट फंड्स में अरबों डॉलर का चतुराई से निवेश कर रहा है और पेंशन प्रणाली में सुधार कर रहा है। उसका गोल्डन-वीजा नए प्रवासियों को आकृष्ट कर रहा है। विकसित देशों में सबसे स्थिर स्टॉक मार्केट आज लिस्बन का ही है। सऊदी अरब तो उन खाड़ी देशों का नेतृत्व कर रहा है, जो तेल के अलावा भी दूसरे विविधतापूर्ण विकल्प आजमाना चाहते हैं। वहां कई सुधार किए जा रहे हैं, जैसे स्त्रियों, पर्यटकों, कामगारों को अधिक आजादी देना और नाइट-लाइफ में ढील देना। अब वहां नॉन-ऑइल सेक्टर्स भी आगे बढ़ रहे हैं, बुनियादी ढांचे में खासा निवेश किया जा रहा है और स्मार्ट-सिटीज़ विकसित की जा रही हैं। इस सूची में सबसे चौंकाने वाला नाम जापान का है, जो अनेक वर्षों से डिफ्लेशन का शिकार था, लेकिन आज वह एक ऐसा दुर्लभ देश बन गया है, जो मुद्रास्फीति की वापसी से लाभान्वित हो रहा है। अभी वहां 2% सालाना ही मुद्रास्फीति है। उसकी कमजोर मानी जाने वाली कॉर्पोरेट-कल्चर अब मुनाफा कमाने लगी है। उसकी श्रम-लागतें अब चीन से भी कम हैं। उसकी मुद्रा येन निर्यात को बढ़ावा दे रही है। यकीनन, ये सातों अर्थव्यवस्थाएं किसी गलत नीतिगत निर्णय या खुशफहमी के चलते अब भी लड़खड़ा सकती हैं, लेकिन फिलवक्त तो वे इस साल के टॉप परफॉर्मिंग स्टॉक मार्केट्स में से एक हैं।

दैनिक जागरण

Date:28-09-22

पीएफआइ का मकड़जाल

संपादकीय

सात राज्यों में पापुलर फ्रंट आफ इंडिया यानी पीएफआइ के ठिकानों पर नए सिरे से छापेमारी और इस दौरान अनेक संदिग्ध लोगों को हिरासत में लिया जाना यही बताता है कि इस संगठन का मकड़जाल कहीं अधिक मजबूत हो गया है। इसके पहले एक दर्जन राज्यों में इस संगठन के ठिकानों पर एनआइए और ईडी के छापों के दौरान सौ से अधिक लोगों को पकड़ा गया था। उस समय अनेक ऐसे आपत्तिजनक दस्तावेज मिले थे, जो यही बताते थे कि यह संगठन किसी आतंकी संगठन की तरह देश विरोधी गतिविधियों में लिप्त है। ऐसे संगठन के खिलाफ कठोरतम कार्रवाई करने के साथ ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे भविष्य में ऐसे समूह सिर न उठा सकें। पीएफआइ के बारे में एक लंबे समय से न केवल यह कहा जा रहा है कि यह प्रतिबंधित आतंकी संगठन सिमी का नया रूप है, बल्कि यह भी कि यह ऐसी गतिविधियों में लिप्त है, जिन्हें आतंकी हरकतों के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता। हैरानी है कि ऐसे संगीन आरोपों से दो-चार होने के बाद भी उसके खिलाफ कोई ठोस कार्रवाई नहीं हुई-और वह भी तब, जब रह-रहकर उसके सदस्यों के बारे में ऐसे तथ्य सामने आते रहे कि वे देश को अस्थिर-अशांत करने के षड्यंत्र में लिप्त हैं। कम से कम अब तो उसके खिलाफ निर्णायक कार्रवाई की ही जानी चाहिए।

पीएफआइ के लोग न केवल विदेशों से अवैध तरीके से धन एकत्र कर रहे थे, बल्कि उसका इस्तेमाल कट्टरता, आतंक और अलगाव को हवा देने में कर रहे थे। अब तो यह भी स्पष्ट है कि यह संगठन हिंदू विरोधी भावनाओं को भड़काने के साथ सामाजिक ताने-बाने और कानून एवं व्यवस्था के समक्ष गंभीर चुनौतियां भी खड़ी कर रहा था। हिंदूफोबिया यानी हिंदुओं को खतरा बताकर उन्हें एक हौवे के रूप में चित्रित करना कोई नई-अनोखी बात नहीं। यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि पीएफआइ इस काम में जुटा हुआ था। वास्तव में हिंदूफोबिया को राष्ट्रीय ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी हवा दी जा रही है। इसका ताजा उदाहरण है इंग्लैंड के शहर लेस्टर में हुई हिंदू विरोधी हिंसा। लेस्टर के बाद बर्मिंघम में भी हिंदू विरोधी उन्माद की झलक मिली। ध्यान रहे कि कनाडा और अमेरिका में भी इस तरह की घटनाएं होती रहती हैं, जो यह बयान करती हैं कि कई अंतरराष्ट्रीय ताकतें हिंदूफोबिया को बल देने में लगी हुई हैं। कुछ समय पहले इसके संकेत तब मिले थे, जब ज्ञानवापी मामला सतह पर था। उस समय पाकिस्तान और अन्य देशों में सक्रिय भारत विरोधी ताकतों ने हिंदूफोबिया फैलाने का काम एकजुट होकर किया था। इसमें संदेह नहीं कि पीएफआइ के संबंध ऐसी कई ताकतों से हैं। इस संगठन के खिलाफ जितने और जैसे प्रमाण मिल चुके हैं, उन्हें देखते हुए उस पर पाबंदी लगाने की दिशा में कदम उठाए जाने चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:28-09-22

भारत का एफटीए एजेंडा क्या होना चाहिए ?

नौशाद फोर्ब्स, (लेखक फोर्ब्स मार्शल के को-चेयरमैन और सीआईआई के पूर्व अध्यक्ष हैं)

विश्व में अनेक क्षेत्रीय व्यापार समझौते हुए हैं। भारत ने भी 2012 के बाद श्रीलंका, बांग्लादेश, आसियान, जापान और दक्षिण कोरिया से व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। भारत में मुक्त व्यापार समझौते (एफटीए) के बारे में उद्योग व सरकार में एक विचार यह पनपना शुरू गया था कि इनसे भारत को फायदा नहीं हुआ बल्कि उल्टा इनसे उसके

उद्योग को नुकसान हुआ। यह विचार त्रुटिपूर्ण था और हम एशिया के साथ महत्त्वपूर्ण समझौते क्षेत्रीय व्यापार आर्थिक भागीदारी (आरसेप) से 2019 में अलग हो गए। लेकिन एक लंबे अंतराल के बाद हम मुक्त व्यापार समझौते पर बातचीत करने के लिए राजी हो गए हैं। ये समझौते यूएई और ऑस्ट्रेलिया के साथ किए जा चुके हैं। इस क्रम में ब्रिटेन, कनाडा और यूरोपीय संघ (ईयू) से बातचीत विभिन्न चरणों में जारी है।

हमारे व्यापार पर एफटीए का कम ही प्रभाव रहा है। हमारे व्यापार में एफटीए की हिस्सेदारी साल 2000 में 16 फीसदी और अभी 18.5 फीसदी है। यह हमारे उद्योग के लिए विध्वंसक नहीं रहे हैं लेकिन हमें एफटीए से आशानुरूप फायदा नहीं दिखाई दिया है। हमारे व्यापार के ज्यादातर साझेदार गैरएफटीए देश अमेरिका, चीन और ईयू हैं। हमारे लिए आयात और निर्यात के मामले में अमेरिका का महत्त्व बरकरार है जबकि ईयू के मामले में गिरावट आ चुकी है।

इस मामले में सबसे बड़ा विजेता चीन रहा है। साल 2000 में हमारे आयात में चीन की हिस्सेदारी 2.6 फीसदी और निर्यात में 1.5 फीसदी थी। लेकिन 2021 में भारत को होने वाले आयात में चीन की हिस्सेदारी 16.5 फीसदी और निर्यात में 7.3 फीसदी हो गई थी। इससे भारत के लिए अमेरिका के बाद चीन दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार बन गया।

कैसे हमें एफटीए से फायदा होगा? क्या एफटीए का एजेंडा होना चाहिए?

एफटीए पर हस्ताक्षर के मायने

हमें उन एफटीए की जरूरत है जो वर्तमान समय में उपयोगी देशों और क्षेत्रों से संबंधित हों या जिनसे हमारा भविष्य में सरोकार रहेगा। हमें वर्तमान समय में शीर्ष के निर्यात बाजार अमेरिका, ईयू और बांग्लादेश पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। हमारे भविष्य के प्रमुख बाजार अफ्रीका और लैटिन अमेरिका हो सकते हैं।

हमने क्षेत्रीय व्यापार आर्थिक भागीदारी (आरसेप) से अलग होकर एशिया में अपनी पहुंच को सीमित कर दिया है और यह महाद्वीप आने वाले समय में विश्व की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। अब हमारे पास दूसरा मौका है, हाल में बने एशिया पैसिफिक इकनॉमिक फ्रेमवर्क (आईपीईएफ) में शामिल होने का। भारत अपनी भूल के कारण आईपीईएफ में व्यापार के आधार स्तंभ से बाहर रहा है। लिहाजा हमें इसमें तुरंत शामिल होना चाहिए और व्यवस्थित ढंग से व्यापार के एजेंडे को आगे बढ़ाना चाहिए। आईपीईएफ में चीन को छोड़ अमेरिका, इंडोनेशिया, जापान, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर और वियतनाम हैं जो हमारी दिलचस्पी के देश हैं।

लिहाजा आईपीईएफ में शामिल होने का दोहरा फायदा है। आईपीईएफ में शामिल होने से हम अपने देश के राष्ट्रीय हितों के अनुरूप वार्ता के तरीके और प्रारूप तय कर सकते हैं। हमें इस मौके को हाथ से नहीं गंवाना चाहिए।

विस्तार की महत्त्वाकांक्षा

विश्व का ज्यादातर कारोबार वैश्विक मूल्य श्रृंखला (जीवीसी) के तहत होता है। इसमें विभिन्न देशों में अनेक चरणों में मूल्य को जोड़ा जाता है। एफटीए का पुराना स्वरूप होने के कारण इसका प्रभाव सीमित हो गया है।

एफटीए में अत्यधिक खपत वाले उत्पादों को बाहर रखा गया या लंबी समायोजन अवधि के साथ विस्तारित शुल्क लगाया गया। अभी अन्य देशों की महत्त्वाकांक्षा कहीं अधिक है। इसीलिए आसियान, दक्षिण कोरिया और जापान ने हमारी तुलना में कहीं अधिक देशों से एफटीए कर रखे हैं।

इस क्रम में चीन ने भी समझौते कर रखे हैं। इनमें से कई समझौते हमारे समझौते के मुकाबले कहीं अधिक बड़े और ज्यादा प्रभाव डालने वाले हैं। इन्हें जीरो-फॉर-जीरो समझौते कहा जाता है। हालांकि जीरो सामान को एफटीए में शामिल नहीं किया गया है। जीरो टैरिफ अक्सर दोनों दिशाओं में लगता है। इससे करीबी व समृद्ध व्यापार श्रृंखला विकसित करने में मदद मिलती है जैसे इलेक्ट्रानिक्स।

पूरे एशिया में इलेक्ट्रानिक्स सामान के कलपुर्जे मिलते हैं और इन्हें असेंबल किया जाता है। हर देश में इन उत्पादों में मूल्य संवर्द्धन हो जाता है। एडम स्मिथ ने 250 साल पहले कहा था कि 'बाजार के विस्तारीकरण से विशेषीकरण का स्तर सीमित हो जाएगा।'

समझौते से कई वस्तुओं को बाहर करने के कारण हम बाजार के विस्तार की अपनी क्षमता को कम कर देते हैं और हमारी आपूर्ति श्रृंखला में हिस्सेदारी लेने की क्षमता भी कम हो जाती है। सफलता की कुंजी उत्पादकता है। उत्पादकता विशिष्टता से आती है और यह हर जगह उत्पाद तैयार करने से नहीं आती है। हमारे व्यापार की नीति में आसान लगने वाली सोच का दबदबा अधिक है। हमें निर्यात पसंद है लेकिन आयात पसंद नहीं है। व्यापार का कोई भी अर्थशास्त्री यह बता सकता है कि आयात पर कर लगाना, दरअसल निर्यात पर कर लगाना है। ज्यादा महंगे व मांग वाले निर्यात के उत्पादों को बनाने के लिए उच्च व मांग वाले आयातित सामान की जरूरत होती है।

कुछ महत्त्वपूर्ण संभावनाएं

परिधान उद्योग के लिए कपड़ा बुनियादी जरूरत है। लेकिन परिधान में छोटे हिस्से जैसे बटन, जिप और अस्तर उत्पाद में जमीन-आसमान का अंतर डाल देते हैं। वाहन उद्योग में आपूर्ति करने वाले स्तर की संख्या घटा दी गई है। इसका कारण यह है कि किसी भी स्तर पर अक्षमता से अगले स्तर पर उत्पाद कम प्रतिस्पर्धी हो जाता है।

हमारा वाहन उद्योग यह दावा करता है कि वह विश्व में छोटी कारों के निर्माण के लिए लागत के हिसाब से सबसे उपयुक्त स्थान है। क्यों फिर यह ब्रिटेन और यूरोपीय संघ के साथ एफटीए में शामिल किए जाने के खिलाफ जोरदार बहस करता है? हमें अपनी क्षमताओं पर अधिक भरोसा होना चाहिए। हमें हस्ताक्षर किए जाने वाले एफटीए में वाहन (वाणिज्यिक वाहनों से लेकर कारों तक, दोपहिया वाहनों से लेकर निर्माण उपकरण तक) और वाहनों के कलपुर्जों दोनों को शामिल करना चाहिए। ब्रिटेन ने 99 प्रतिशत टैरिफ लाइन को शामिल करने की पेशकश की है। भारत 100 प्रतिशत चाहता है और इसे प्राप्त करना चाहिए। और हमें भी अपना शत-प्रतिशत देना चाहिए। दूसरे शब्दों में इसे और व्यापक और प्रभावशील बनाए जाने की जरूरत है।

अंतर्निहित प्रतिस्पर्धा को दर्शाते व्यापार के ढर्रे

यह कोई संयोग नहीं है कि हमारा बीते दो दशकों में चीन, दक्षिण कोरिया और वियतनाम से कारोबार बढ़ा है। ये विश्व के सबसे ज्यादा प्रतिस्पर्धी देश हैं और लगभग सभी देशों के व्यापार संतुलन का झुकाव इन तीन देशों की ओर हो गया

है। हम शायद गैर शुल्कीय बाधाओं और कारोबार की अधिक लागत की शिकायत कर सकते हैं लेकिन हम प्रतिस्पर्धा को बढ़ाकर व्यापार संतुलन को निश्चित रूप से सुधार सकते हैं। हमें एफटीए का उपयोग अपनी फर्म की प्रतिस्पर्धा क्षमता बढ़ाने के लिए करना चाहिए। ऐसे में फर्म को अनिवार्य रूप से बदलाव करना चाहिए जिसमें आधारभूत सरंचना, नियमन, सहजता से कारोबार करना आदि हैं। इससे प्रतिस्पर्धी लागत में कमी आएगी।

समन्वित व्यापार और उद्योग नीति

हमारे उद्योग नीति में प्रमुख तौर पर उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन योजना है। इस योजना के तहत 14 क्षेत्रों में उद्योग को सकल घरेलू उत्पाद की एक फीसदी रियायत की अवधि पांच साल है ताकि उनका उत्पादन बढ़े।

इन क्षेत्रों को हमारी व्यापार नीति से जोड़ा जाए। इसमें रियायत लेने वालों के लिए निर्यात अनिवार्य (अभी 14 क्षेत्रों में से दो या तीन क्षेत्रों में है) किया जाए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि पीएलआई में शामिल सभी उत्पादों को हस्ताक्षर किए जाने वाले एफटीए में स्पष्ट रूप से शामिल किया जाए। (यूएई से किए गए एफटीए में पीएलआई स्कीम के तहत एयर कंडीशनर को छोड़कर आने वाले सभी 'व्हाइट गुड्स' को शामिल किया गया था।)

चीन +1 नीति का फायदा उठाएं

एफटीए में अनिवार्य रूप से निर्यात और आयात पर जोर होना चाहिए। हमारा इन उत्पादों से अधिक सरोकार है - वाहन और उनके कलपुर्जे, व्हाइट गुड्स, वस्त्र और परिधान, रसायन व औषधि और इंजीनियरिंग। लिहाजा हमें इन उत्पादों को अवश्य शामिल करना चाहिए। ये उत्पाद हमारे आने वाले कल के लिए जरूरी हैं। हमें व्यापार वार्ताओं में ई-कॉमर्स, इलेक्ट्रिक वाहन और डेटा निजता को शामिल करना चाहिए - हमें इस मामले में जल्दी से राय बनानी चाहिए। हमें यह भी देखना चाहिए कि इन क्षेत्रों में हम कहां खड़े हैं। विश्व चीन +1 की आपूर्ति की ओर बेसब्री से देख रहा है। ऐसी स्थिति का फायदा लेने के लिए भारत से अच्छा कोई देश नहीं है। लेकिन इस स्थिति का फायदा लेने के लिए यह जरूरी है कि हमारा उद्योग अपनी क्षमताओं पर विश्वास करे ताकि वह भारत और विश्व में सर्वश्रेष्ठ के लिए प्रतिस्पर्धा कर सके। भारतीय उद्योग का भविष्य व्यापार निर्धारित कर सकता है।

जनसत्ता

Date:28-09-22

अमेरिका को दो टूक

संपादकीय

हाल में पाकिस्तान को एफ-16 विमानों के रखरखाव के लिए मोटा पैकेज देने के मुद्दे पर विदेश मंत्री एस जयशंकर ने अमेरिका को जो खरी-खरी सुनाई है, वह उचित तो है ही, अमेरिका के लिए दो टूक संदेश भी है कि अगर उसने पाकिस्तान को किसी भी तरह की सैन्य मदद दी तो यह भारत के साथ अच्छा नहीं होगा। अमेरिका को इस मुद्दे पर बहुत ही साफगोई से भारत के रुख से अवगत करवाना जरूरी भी था। विदेश मंत्री का स्पष्ट रूप से यह कह देना कि इस्लामाबाद के साथ वाशिंगटन की दोस्ती अमेरिकियों के हित में नहीं है, भारत के कड़े रुख को तो बताता ही है, साथ ही अमेरिका और पाकिस्तान के दोहरेपन को भी उजागर करता है। गौरतलब है कि अमेरिका ने एफ-16 विमानों के लिए पाकिस्तान को पैंतालीस करोड़ डालर का पैकेज दिया है। इस रकम से पाकिस्तान इन विमानों को उन्नत बनाएगा और अपनी सैन्य क्षमता को और मजबूत करेगा। इस पैकेज का मतलब साफ है कि पाकिस्तान की सैन्य मदद के लिए अमेरिका ने फिर से तिजोरी खोल दी है। सवाल यह है कि उसका यह कदम भारतीय हितों के लिए अच्छा कैसे माना जा सकता है?

हालांकि अब अमेरिका सफाई देने में लगा है कि एफ-16 विमानों के लिए उसने पाकिस्तान को जो करोड़ों डालर की मदद दी है, वह सैन्य सहायता नहीं है, बल्कि विमानों के रखरखाव और उन्हें उन्नत रूप देने के लिए है। लेकिन इसके पीछे सच्चाई क्या है, यह किसी से छिपा नहीं है। क्या अमेरिका को नहीं मालूम कि पाकिस्तान ने एफ-16 विमानों की खरीद क्यों की और उनकी तैनाती कहां की गई है? क्या अमेरिकी प्रशासन और सैन्य रणनीतिकारों को नहीं पता कि पाकिस्तान एफ-16 की आड़ में मिलने वाली इस मदद का इस्तेमाल किस काम में करेगा? यह तो अमेरिका को भी पता है कि पाकिस्तान अपनी सैन्य ताकत भारत से मुकाबला करने के लिए बढ़ा रहा है। उसकी एकमात्र प्रतिद्वंद्विता भारत के साथ है। दिवाली बाद गुरु बृहस्पति इन 4 राशि वालों की चमका सकते हैं किस्मत, घनलाभ और उन्नति के प्रबल योग ऐसे में अमेरिका अगर उसे कोई भी सैन्य सहायता देता है तो इसका मतलब साफ है कि वह भारत के खिलाफ पाकिस्तान को मजबूत कर रहा है। हैरानी की बात तो यह है कि अमेरिका ने इस मदद के पीछे तर्क यह दिया है कि इससे पाकिस्तान को आतंकवाद से निपटने में मदद मिलेगी। याद किया जाना चाहिए कि अमेरिका खुद पाकिस्तान को आतंकवाद का गढ़ कहता रहा है और उसके खिलाफ वैश्विक स्तर पर कार्रवाई की बातें करता रहा है।

अमेरिका अब भले कितनी सफाई क्यों न देता रहे, लेकिन इतना तो साफ है कि उसके इस कदम से उसका दोहरा चरित्र एक बार फिर उजागर हो गया है। एक तरफ तो वह पाकिस्तान को आतंकवादी देश कहता रहा है और दूसरी ओर उसे सैन्य मदद भी दे रहा है! महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि पूर्व राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने पाकिस्तान पर जो कड़े प्रतिबंध लगाए थे, बाइडेन प्रशासन ने उन्हें खत्म कर फिर से पाकिस्तान को सैन्य मदद का रास्ता खोला है। आखिर ऐसी कौन-सी मजबूरी आ गई कि उसे ऐसा फैसला करना पड़ गया। आश्चर्य इस बात का है कि एक तरफ तो अमेरिका भारत को अपना करीबी सहयोगी बताता है, क्वाड जैसे संगठन में भी भारत उसका सहयोगी है, लेकिन फिर भी पाकिस्तान से उसका मोह भंग नहीं होता। इस सच्चाई से कोई इनकार नहीं करेगा कि पाकिस्तान को सैन्य रूप से सबसे ज्यादा

मजबूत अमेरिका ने ही बनाया है। वह दशकों से उसे भारी सैन्य और आर्थिक सहायता देता रहा है। ऐसे में अगर अब भी पाकिस्तान को लेकर अमेरिका की यही नीति रहती है, तो इससे भारत-अमेरिकी रिश्ते प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकते।

राष्ट्रीय सहारा

Date:28-09-22

रंग बदलता अमेरिका

संपादकीय

अमेरिका को एफ-16 विमानों के रखरखाव के लिए पैकेज देकर पाकिस्तान के साथ दरियादिली दिखाने पर भारत ने आड़े हाथों लिया तो उसे अब इस पर सफाई देनी पड़ रही है। भारत के विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने पाकिस्तान के लिए अमेरिकी प्रशासन द्वारा 45 करोड़ डॉलर के पैकेज को मंजूरी दिए जाने के फैसले पर सवाल उठाते हुए दो टूक कहा कि अमेरिका के पाकिस्तान के साथ संबंधों से दोनों में से किसी देश को कोई फायदा नहीं हुआ है। आप आतंकवाद के खिलाफ मदद की बातें कहकर किसी को मूर्ख नहीं बना सकते। हर कोई जानता है कि एफ-16 का कहां और किसके खिलाफ इस्तेमाल किया जाता है। अमेरिका को वास्तव में अब सोचना चाहिए कि पाक से संबंध का फायदा क्या है, और इससे उन्हें क्या मिल रहा है। बाइडेन प्रशासन ने पूर्व राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के पाकिस्तान को सैन्य सहायता पर रोक लगाने के फैसले को पलटते हुए पाकिस्तान को एफ-16 लड़ाकू विमानों के वास्ते 45 करोड़ डॉलर की मदद देने की मंजूरी दी थी। रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने अमेरिका के फैसले पर दो हफ्ते पहले ही अमेरिकी रक्षा मंत्री लॉयड ऑस्टिन से बातचीत में चिंता जताई थी। पैकेज पर भारतीय विदेश मंत्री के सवाल उठाने पर अमेरिका को सफाई देनी पड़ रही है। बाइडेन प्रशासन ने सोमवार को कहा कि अमेरिका के संबंध भारत और पाकिस्तान के साथ निहायत अलग तरह के हैं। दोनों अमेरिका के साझीदार हैं। अमेरिकी विदेश मंत्रालय का कहना था कि हम भारत और पाकिस्तान के साथ संबंधों को एक नजरिए से नहीं देखते। दोनों को सहयोगियों के तौर पर देखते हैं। भारत के साथ हमारे संबंध अपने आप में अलग हैं, और पाकिस्तान के साथ हमारा रिश्ता अलग है। अमेरिका की इस सफाई को सतर्कता से देखने की जरूरत है। बाइडेन प्रशासन ने मानो ओबामा और ट्रंप की नीतियों से बिल्कुल अलग जाने का फैसला कर लिया है। भारत को अमेरिका के बदले रुख के प्रति सतर्क हो जाना चाहिए क्योंकि अमेरिका की मदद पाक को भारत के प्रति पुरानी चालें अख्तियार करने के लिए उकसा सकती है। इससे क्षेत्रीय शांति पर गहरा असर पड़ सकता है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:28-09-22

सुनवाई का प्रसारण

संपादकीय

आज से लगभग ढाई दशक पहले सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि इंसाफ होना ही नहीं चाहिए, बल्कि उसे होते हुए दिखना भी चाहिए। तभी से इसे न्याय की पूर्णता के संदर्भ में एक सूत्र-वाक्य की तरह इस्तेमाल किया जाता रहा है, पर मंगलवार को सांविधानिक मामलों की सुनवाई की 'लाइव स्ट्रीमिंग' कर सुप्रीम कोर्ट ने दशकों पुरानी एक मांग पूरी कर दी। फिलहाल सांविधानिक मामलों के प्रसारण की व्यवस्था की गई है, जिसे कोई भी देख सकता है, लेकिन यकीनन यह भारतीय न्यायपालिका के इतिहास का एक प्रस्थान बिंदु है। दरअसल, वर्तमान प्रधान न्यायाधीश यूयू ललित की अध्यक्षता वाली खंडपीठ ने ही यह फैसला दिया था कि पारदर्शिता के लिहाज से ऐसा करना बिल्कुल वाजिब कदम है। जाहिर सी बात है, जो व्यवस्था सर्वाधिक पारदर्शी होती है, उसमें नागरिकों की आस्था का स्तर सबसे ऊंचा होता है।

बदलते दौर में तकनीक के इस्तेमाल से तंत्र को चाक-चौबंद करने की किसी भी कार्रवाई का स्वागत किया जाना चाहिए। सांविधानिक संकट की स्थिति में सुप्रीम कोर्ट द्वारा कई विधायी कार्यवाहियों की रिकॉर्डिंग के आदेश को इसी रूप में देखा जाता रहा है और पीठासीन अधिकारियों पर इसका असर भी दिखा था। ऐसे में, भविष्य में जब इस फैसले का विस्तार होगा, और वह निचली अदालतों तक पहुंचेगा, तब जरूर इस पहल से बड़ा फर्क पडेगा। यह मानने में कोई गुरेज नहीं कि हमारे यहां मुकदमों के बढ़ते बोझ की एक बड़ी वजह बेवजह तारीख-पर-तारीख की प्रवृत्ति है और यह प्रवृत्ति दीवानी कानून में इस बदलाव के बाद भी दूर नहीं हुई कि किसी मुकदमे में तीन से अधिक स्थगन नहीं होना चाहिए। निस्संदेह, जजों और संसाधनों की कमी भी एक बड़ी बाधा है, लेकिन न्यायिक शिथिलता की शिकायत आम बात है। उम्मीद है, रिकॉर्डिंग और प्रसारण के विस्तार से इस प्रवृत्ति पर कुछ हद तक अंकुश लग सकेगा।

सन् 1989 में जब लोकसभा और राज्यसभा की कार्यवाहियों की रिकॉर्डिंग के बाद सीधा प्रसारण शुरू हुआ, तभी से यह मांग की जा रही थी कि अदालती कार्यवाहियों का भी सीधा प्रसारण होना चाहिए। हालांकि, इसका एक और पहलू है। संसद की कार्यवाहियों के सीधा प्रसारण का संसदीय कार्यशैली या शासन के रंग-ढंग पर कितना सकारात्मक असर पड़ा, यह शोध का विषय है, अलबत्ता आम धारणा यही बनी कि हमारे माननीयों ने जनता की नजरों में आने के लिए न सिर्फ संसदीय मर्यादा का सायास उल्लंघन किया, बल्कि इस तरह लक्षित मतदाता वर्ग में अपनी मजबूत पहचान बनाने में भी वे सफल हो गए। बहरहाल, भारतीय न्यायपालिका अपने अनुशासन और प्रतिबद्धता के लिए दुनिया भर में सराही जाती रही है, इन प्रसारणों से उसकी साख और बढ़ेगी। हां! शुरुआत में एक समस्या अवश्य आएगी कि न्यायिक फैसलों से इतर न्यायमूर्तियों की टिप्पणियों का भी खूब संज्ञान लिया जाएगा। ऐसे में, उन्हें अतिरिक्त सतर्क रहना होगा। हाल की कुछ टिप्पणियों को लेकर कतिपय न्यायमूर्तियों के प्रति सोशल मीडिया में जिस तरह की मुहिम दिखी थी, उसकी बाढ़ भी आ सकती है। ऐसे में, सरकार और नियामक तंत्र की यह जिम्मेदारी है कि वे नागरिकों की लोकतांत्रिक आजादी को बाधित किए बिना ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करें, जिसमें किसी जज को दुष्प्रेरित मुहिम का शिकार न बनाया जा सके। इंसाफ का तकाजा यही है कि इंसाफ करने वालों के साथ भी कोई नाइंसाफी न हो।

Date:28-09-22

कट्टरता की तह तक जल्दी पहुंचे जांच

आर के राघवन, (पूर्व निदेशक, सीबीआई)

राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए), प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) और राज्य पुलिस बलों द्वारा पॉपुलर फ्रंट ऑफ इंडिया (पीएफआई) के खिलाफ की जा रही राष्ट्रव्यापी कार्रवाई ने जोरदार, लेकिन आरोप-प्रत्यारोपों वाली बहस शुरू कर दी है। एक मुखर खेमा मानता कि मुस्लिम-विरोधी खास एजेंडे को आगे बढ़ाने के कारण पीएफआई को निशाना बनाया जा रहा है, जबकि दूसरा वर्ग इस बात के लिए सत्ता-प्रतिष्ठान की तारीफ कर रहा है कि उसने एक ऐसे संगठन के खिलाफ कार्रवाई की है, जो व्यवस्था को अस्थिर करने पर आमादा है। हालांकि, निष्पक्ष विचारक इन दोनों मतों के बीच कहीं सच के छिपे होने की बात कह सकते हैं।

पीएफआई तीन इस्लामिक गुटों के विलय के साथ साल 2006 में अस्तित्व में आया। अपनी उग्र भाषा और मुस्लिम समुदाय को हिंदू पूर्वाग्रह के शिकार के रूप में चित्रित करने के कारण इसने अधिकारियों का ध्यान अपनी ओर खींचा। इसी पृष्ठभूमि के कारण वह स्पष्ट करता है कि दक्षिणपंथी हिंदूवादी तत्वों के खिलाफ लड़ने के लिए वह संकल्पित है, चाहे इसके लिए उसे जिस किसी साधन का इस्तेमाल करना पडे। नतीजतन, पिछले एक दशक में हिंसा खूब बढ़ी है, खासकर दक्षिण भारत में। केरल, जहां एक बड़ी और दबदबा रखने वाली मुस्लिम आबादी है, पीएफआई का गढ़ है और इस समुदाय के खिलाफ कथित अन्याय को लेकर यहां अक्सर संघर्ष होते रहे हैं।

शुरुआती दिनों में पुलिस की प्रतिक्रिया सुस्त और बिखरी हुई थी। यह जाहिर तौर पर सत्ता की तरफ से स्पष्ट दिशा-निर्देश के अभाव के कारण था। तब भ्रमित पुलिस पदानुक्रम के कारण भी पीएफआई के खतरों से निपटने के लिए जरूरी कार्रवाई को लेकर आम सहमति नहीं बन पाई। पुलिस नेतृत्व इस बात को लेकर सावधान रहता था कि ऐसी किसी कार्रवाई से उस पर धार्मिक पूर्वाग्रह के लांछन न लग जाएं।

साल 2014 में नरेंद्र मोदी सरकार की ताजपोशी और कुछ राज्यों में बदलाव से कानून लागू करने संबंधी नजरिये में स्पष्टता आई है। राजनीतिक दिशा अब कहीं अधिक स्पष्ट और सख्त कार्रवाई की पक्षधर है। हाल के छापों और महत्वपूर्ण दस्तावेजों की जब्ती से हम इसे आसानी से समझ सकते हैं। यहां तक कि मीडिया से बातचीत के दौरान भी एजेंसियों ने मामले की गंभीरता कम नहीं आंकी। उनकी यह साफगोई भविष्य के लिए उम्मीद जगाती है।

एजेंसियों ने साफ कहा है कि पर्याप्त सुबूतों व राह भटके पीएफआई काडर व संगठन से सहानुभूति रखने वालों की पहचान करने के बाद ही छापेमारी की कार्रवाइयों को अंजाम दिया गया। यह बताता है कि उन्होंने गैर-कानूनी कृत्यों को बेपरदा करने के लिए किस कदर की मेहनत की होगी। छापेमारी व गिरफ्तारियों के बाद हिंसा की छिटपुट घटनाओं से पता चलता है कि पीएफआई नेतृत्व इन कार्रवाइयों को लेकर बेखबर था। अपनी योजना को इस कदर गोपनीय बनाए रखने के लिए एनआईए व ईडी, दोनों को बधाई देनी चाहिए, क्योंकि कई मामलों में हमने देखा है कि विश्वासघातियों ने अपराधियों या संदिग्धों को पहले ही संवेदनशील जानकारियां लीक कर दीं।

यह मानने की भी ठोस वजह है कि कुछ पीएफआई सदस्य सीमा-पार के आतंकी गुटों के साथ मिल गए थे। हालांकि, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में यह दुरभिसंधि दिखी है और इसे तोड़ा जाना आवश्यक है। यह विश्वास करना कठिन है कि पीएफआई गोपनीय तरीके से जो कर रहा था, उससे राष्ट्रीय सुरक्षा को कोई खतरा नहीं था। अगर सरकार को दोष देना है, तो इस तरह की कार्रवाई पहले न किए जाने के लिए उसको दोषी मानना चाहिए। हालांकि, मेरा यही मानना है कि अधूरी तैयारी या पर्याप्त सुबूतों के अभाव में की गई कार्रवाई से बेहतर है, कुछ समय के लिए इंतजार करना। लिहाजा सवाल यह है कि अब आगे किस तरह की चुनौतियां आने वाली हैं? निश्चय ही, कई जटिल मुद्दे हमारा इंतजार कर रहे हैं, क्योंकि काम का एक छोटा हिस्सा अभी पूरा हुआ है।

इन कार्रवाइयों के दो पहलू हैं, जिन पर संजीदगी से ध्यान देना होगा। पहला, एनआईए और ईडी, दोनों ने काफी मुश्किल काम को अंजाम दिया है। इससे पहले कि पीएफआई खुद को फिर से संगठित करे, हमें उसके अन्य अज्ञात स्रोतों और तत्वों की पहचान करनी होगी। उसके अंतरराष्ट्रीय रिश्ते को उजागर करना सबसे जरूरी है और मुझे विश्वास है कि इंटेलिजेंस ब्यूरो (आईबी) व रिसर्च ऐंड एनालिसिस विंग (रॉ) इसके लिए आगे आएंगे। अच्छी बात है कि हमने अभी तक सरकारी एजेंसियों के बीच किसी तरह के तनाव की बात नहीं सुनी है। यह भविष्य की कार्रवाइयों के लिहाज से एक शुभ संकेत है। चूंकि हमारे कई पश्चिमी देशों के साथ बहुत अच्छे संबंध हैं, तो हम उनके खुफिया संगठनों की इस मामले में हरसंभव मदद ले सकते हैं। पीएफआई का एजेंडा निश्चय ही भारत और उसके पड़ोस में अंतर-धार्मिक संघर्ष पैदा करना है। हमें इसकी जड़ें खोदने की जरूरत है।

दूसरा कठिन काम, गिरफ्तार पीएफआई सदस्यों और उसके समर्थकों का सफल अभियोजन कराना है। एजेंसियों द्वारा एकत्र किए गए सुबूतों की पूरी सावधानी के साथ छानबीन की जानी चाहिए और उनको सक्षम अभियोजकों (अदालत में जिरह करने वाला वादी) को सुपुर्द करना चाहिए। इसमें कोई जी-हुजूरी करने वाला कानूनी अधिकारी नहीं चाहिए। इस मामले को ऐसे सक्षम और ईमानदार अधिकारी की जरूरत है, जो जांच अधिकारियों द्वारा पेश हर सुबूत को मंजूरी देने से पहले पूरी तरह से जांचे-परखे। यह कतई नहीं भूलना चाहिए कि इतिहास में कई ऐसे उदाहरण मौजूद हैं, जब नाकारा जांच-पड़ताल ने कई महत्वपूर्ण मामलों को बेपटरी कर दिया। अगर एनआईए व ईडी को और अधिक विश्वसनीयता अर्जित करनी है, तो उनकी जांच सच की तह तक जानी चाहिए। सुनियोजित आतंकी मामलों में यह निश्चय ही एक बेहद कठिन चुनौती है।

एक बात और। हमें यह मानना चाहिए कि कोई भी जांच एजेंसी सर्वज्ञ नहीं होती या वह चूक नहीं कर सकती। हाल की कुछ गिरफ्तारियों में भी ऐसा कहा जा सकता है। लिहाजा अपनी गलतियों को स्वीकारने से इन एजेंसियों की प्रतिष्ठा ही बढ़ेगी।